थारू जनजाति एवं थारू बोली

कुमार अनुपम

भारत और नेपाल की मिली-जुली सीमा पर दोनों ओर की विस्तृत उपत्यका में वन्योपजीवी थारू नामक जाति बसी हुई है। यह जाति आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से अत्यधिक पिछड़ी होने के कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान में एक जनजाति के रूप में अनुसूचित की गयी है।

भारत में यह जाति मुख्य रूप से कुमाऊं, खीरी, बहराइच, बलरामपुर तथा गोंडा जनपद में निवास करती है। नौकरी आदि के सिलसिले में कुछ थारू परिवार बस्ती, सिद्धार्थनगर, महराजगंज, गोरखपुर आदि जनपदों में तथा बिहार राज्य के चम्पारन और बिहार के कुछ स्थानों पर जाकर बस गये हैं।

थारू न वनवासी हैं, न पहाड़ी और न मैदानी। ये लोग पर्वत उपत्यकाओं के वन प्रदेश की सीमा पर रहने वाले जनभीरु, आखेटप्रिय, और मदिरापान करने के शौकीन हैं।

थारुओं के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उक्ति है कि-

'गांजा पियो, भांग पियो और पियो दारू

खाले-ऊंचे गिरि धरों तब कहाओ थारू।'

यह लोकोक्ति थारूओं के क्रिया-व्यवहार का एक व्यंग्यात्मक चित्र खींचती है। जबकि थारू धूप-शीत सहन करने वाले मज़बूत काठी के बेहद परिश्रमी होते हैं। शायद इसीलिए इन्हें 'अउल न लगने जाति' अर्थात् 'लू न लगने वाली जाति' कहा जाता है।

थारू पुरुष (राना थारू को छोड़कर) प्रायः सांवले तथा थारू स्त्रियां प्रायः गौरवर्ण की होती हैं। थारुओं के विषय में प्रसिद्ध है-

'चिप्पट नकिया गूंठ सरीर

करिया गोरहर थारू धीर।'

चपटी नाक, चौड़ा माथा, उभरी हुई कपाल अस्थि और ठिगने शरीर वाले थारू गोरे और सांवले दोनों ही वर्ण के होते हैं। थारू हिन्दू हैं। हिन्दू देवी-देवताओं, पूजा-पर्वो और हिन्दू चरितों के प्रति इनमें अगाध श्रद्धा और दृढ़ आस्था है तथापि उनके कुछ देवता हैं और अपने मिथकीय चरित।

थारू जाति का नामकरण किस आधार पर हुआ, यह विवादास्पद है। विभिन्न मत हैं विद्वानों के, उन पर कभी अलग से चर्चा करूंगा।

मनुष्य जाति की एक सार्वभौम परम्परा है कि वह अपने अतीत को मिथकीय विश्वासों से जोड़ देती है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक जाति और कबीले में, चाहे वह सभ्य समाज हो अथवा कोई आदिम जनजाति सामान्य रूप से पाई जाती है। थारू जनजाति में भी एक मिथकीय विश्वास जड़ जमाए हुए है। इस विश्वास के अनुसार थारुओं के पुरातन पुरुष त्रृक्ष्येसुर (त्रृक्ष्येवर) नाम के महात्मा हैं जो इस जाति के संरक्षक सन्त हैं।

थारू पुराण कथा के अनुसार त्रृक्ष्येसुर (त्रृक्ष्येवर) राजा वेन का भ्रष्ट पुत्र है। राजा वेन जिनकी ऐतिहासिकता का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, पुराण पुरुष के रूप में अवध क्षेत्र की लोक कथाओं में बहुचर्चित हैं। राजा वेन के राज्यकाल में

भीषण दुर्भिक्ष पड़ने के कारण प्रजा के साथ ही राजा को भी सपरिवार संकटों से भरा जीवन बिताने के लिए मजबूर होना पड़ा था। राजा ने अपने पुत्र को उसकी स्पष्टवादिता से रुष्ट होकर अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था। किंवदन्ती है कि राजा वेन के यह पूछने पर कि तुम किसका दिया हुआ खाते पहनते हो; त्रृक्ष्येवर ने उत्तर दिया था कि अपने भाग्य से मैं परमात्मा का दिया हुआ खाता-पहनता हूं। राजा वेन पुत्र का तिरस्कार भरा ऐसा उत्तर सुनकर क्रुद्ध हुए और अपने इकलौते बेटे को भाग्य के भरोसे जीवन बिताने जंगल भेज दिया। त्रृक्ष्येवर ने वन में रहते हुए अपने कुछ साथियों को संगठित किया और कृषि द्वारा जीवन यापन करने के उद्यम का शुभारम्भ किया। परम्परागत विश्वास के अनुसार वेन (वेणु) के पुत्र त्रृक्ष्येवर प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने खेती करने की कला विकसित की। थारू अपने को इन्हीं त्रृक्ष्येवर के अनुयायी और शिष्यों का वंशधर मानते हैं।

इस लोक विश्वास से इस बात का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि थारूओं के पूर्वजों ने किन्हीं कारणों से मैदानी क्षेत्रों से भाग कर दुर्गम वन प्रान्तों में शरण ली थी। इस तथ्य से इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि थारू शान्त स्वभाव के और कृषि कार्य में दक्ष एवं परिश्रमी होते हैं। सन्तोष इनका परम गुण है।

शारीरिक बनावट

थारूओं की बनावट सीमावर्ती मैदानी प्रदेशों से भिन्न किन्तु नेपालियों की आकृति से बहुत मेल खाती है।

इनकी प्रकृति के आधार पर थारू जाति का अध्ययन करने वाले अधिकांश विद्वानों नृशास्त्रियों ने इन्हें मंगोलवंशी माना है। ठिगना कद, चौड़ा माथा, चपटी नासिका, भरे कपोल और दाढ़ी-मूछों की विरलता से इनके मंगोलवंशी होने का विश्वास सहज ही होता है। नेपालियों की तरह थारूओं की कपोल अस्थियां चौड़ी उभरी हुई तथा चेहरे की आकृति गोलाकार होती है। थारूओं का रंग गेहुआं होता है। किन्तु वर्तमान समय में इस जाति के तमाम व्यक्ति सांवले रंग के मिल जाते हैं।

थारूओं की प्रमुख सात उपजातियां हैं। उपजातीय भिन्नता के अनुरूप थारुओं के रंग-रूप में भी पर्याप्त भिन्नता मिलती है।

डॉ. कमला सांकृत्यायन थारुओं का मूल मानखमेर या किरात जाति से जोड़कर देखती हैं किन्तु उनका मत बोक्सा (बुक्सा) जाति को छोड़कर थारूओं पर लागू नहीं होता। बोक्सा एक पर्वतीय जनजाति है जो नैनीताल में पायी जाती है। इन्हें बोक्सा थारू भी कहा जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि ये थारूओं की उपजातियां नहीं हैं। बल्कि थारूओं से भिन्न एक स्वतन्त्र जनजाति है। इसलिए थारूओं को मानखमेर या किरातवंशी मान लेना युक्तिसंगत नहीं है।

नेपाल के प्रेम बहादुर लिम्बु ने भी थारूओं को किरातवंशी माना है। लेकिन उनके मत को भी कोई पुष्ट आधार नहीं मिल सका है। उन्होंने अपनी खोज में दनवार थारूओं को किरातवंशी माना है। उन्हें थाङ्दाव (किरात) का वंशज सिद्ध किया है। यह कल्पना केवल नामकरण के साम्य पर आधारित है और वास्तविकता यह है कि दनवार थारू नामक कोई उपजाति नहीं है, दङ्वार अवश्य है। यह दांग क्षेत्र के निवासियों के लिए भौगोलिक आधार पर दिया गया नाम है। इसके अलावा थारूओं में केवल दङ्वारिया को किरातवंशी मान भी लिया जाय तो उन्हीं के सगोत्री दूसरी उपजातियों वाले थारू की उत्पत्ति कैसे किरातों से सिद्ध किया जा सकता है।

उपर्युक्त मानखमेर और किरातवंशी मान्यताओं से भिन्न मत डॉ. बृजकिशोर वर्मा का है। डॉ. वर्मा ने हूणों के आक्रमण के समय अवशिष्ट हूण और नेपालियों की संकर जाति के रूप में थारूओं की उत्पत्ति माना है। बारहवीं शताब्दी में बख्तियार खिलजी के शासनकाल के कुछ अभिलेखों में थारू क्रोचे मेचे आदि जातियों का उल्लेख मिलता है और इनकी रूपाकृति साइबेरिया के कबीलों से मिलती-जुलती बतायी गयी है।

थारूओं की उपजातियां

इस जनजाति में व्यवसाय के आधार पर जातीय विभाजन इतना नहीं है जितना स्थान भेद के आधार पर है। उदाहरण के लिए थारूओं में ब्राह्मण के रूप में छोटा-मोटा संस्कार कराने वाला थारू 'बभना' कहलाता है। तथापि थारू बभना और गैर थारू बभना आपस में रोटी-बेटी का सम्बन्ध बिना किसी उपजातीय बोध के परस्पर करते हैं। यही स्थिति बढ़ई और कुम्हार थारूओं में भी है। वैसे बढ़ई और कुम्हार थारू का कोई वंशगत व्यवसाय न होकर व्यक्तिगत होता है। अतः व्यक्ति विशेष के व्यवसाय के आधार पर उनमें व्यावसायिक जाति भेद की धारणा बना लेना अनुपयुक्त है।

स्थान भेद के आधार पर थारूओं की कुछ उपजातियां बन गयी हैं, जिनमें से मुख्य हैं- राना थारू, दङ्वरिया थारू, कठरिया थारू, चितवनियां थारू, कोचिला थारू, मोरंगिया थारू, पुरबिया थारू, पछिमियां थारू।

इन स्थानवाची थारूओं के अतिरिक्त दहीत थारू और जोगी थारू थारुओं की उपजातियां मिलती हैं। दहीत थारुओं की दो उपजातियां खतखेररी और गङदग्गा थारू की हैं।

संक्षेप में, राना थारू अपने को राणा प्रताप का वंशधर और अन्य थारुओं से, अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। सामाजिक दृष्टि से यह उपजाति अपेक्षाकृत समुन्नत है। स्त्रियां पुरुओं की तुलना में अधिक सुन्दर और

परिवार में पुरुष वर्ग की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिष्ठित और अधिकार-सम्पन्न होती हैं। नेपाल के राणा थारुओं में तो एक परम्परा अभी तक चली आ रही है कि राना थारू स्त्रियां भोजन तैयार कर परोसने के बाद उसे पुरुष के सामने पांव से सरका देती हैं। निश्चय ही यह प्रथा उन स्त्रियों के राजवंश प्रसूत होने की पुष्टि करती है। जो आपद्काल में अपने सेवकों के सम्पर्क में रहकर अपना वंश चलाने के लिए विवश थीं।

दंङ्वरिया उपजातियों का यह नाम स्थानवाची है। नेपाल का दांग प्रदेश थारूओं का मूल स्थान है। आज भी सर्वाधिक जनसंख्या दांग क्षेत्र में ही है। कालान्तर में इसी स्थान से जाकर थारू लोग दक्षिण पश्चिम नेपाल में आबाद हुए। यह भी उल्लेखनीय है कि दांग दुबखुरि (देवखर) प्रदेश पहले भारत देश का भूभाग रहा। बलरामपुर, गोंडा जनपद में दंगवरिया थारुओं की ही जनसंख्या सर्वाधिक है। ये थारू दांङदेश के कल्पित राजा दांङपति अथवा दंग्वै अथवा उंग्वै का अपना पूर्व पुरुष और शासक मानते हैं।

कठरिया थारू अपने को दंङ्वरिया थारुओं से श्रेष्ठ मानते हैं। इन लोगों का मत है कि कठरिया शब्द 'कटार' अथवा 'कटरिया' से आविर्भूत है। सिसोदिया क्षत्रियों में कटार से सिन्दूर दान की प्रथा थी। प्रारम्भ में यह परम्परा कठरिया थारुओं में थी प्रचलित थी जिसके कारण इन्हें कठरिया थारू कहा जाने लगा। यद्यपि यह परम्परा अब कठरिया थारुओं में प्रचलित है या नहीं, इसकी किसी भी साक्ष्य से पुष्टि नहीं हो पाती है। कठरिया थारू अधिकांशतः शाकाहारी थारुओं की भिन्नता दिखाने के लिए इन्हें कठरिया कहा जाने लगा। यह सामयिक विशेषण कालान्तर में वर्ग विशेष का बोधक बन गया।

चितवनियां थारूओं की उपजाति का नामकरण स्थानपरक है। चितवन नेपाल का एक जिला है जिसमें थारुओं की अच्छी खासी जनसंख्या आबाद है।

कोचिला थारू अपना मूल स्थान कुच बिहार मानते हैं।

नेपाल के मोरंग प्रदेश में रहने वाले मोरंगिया थारू कहलाने लगे।

आजीविका की खोज में नेपाल के पूर्वी भाग से जाकर बहुत से थारू नेपाल के सुदूर पश्चिमी भाग के लाली कंचनपुर में बस गये। इन्हें वहां के प्राचीन थारुओं ने पुरबिया थारू कहा।

दांङ क्षेत्र से जाकर जो थारू नेपाल के पूर्वी जिलों में आबाद हुए वे वहां के पुराने थारुओं द्वारा पछिमियां कहकर सम्बोधित किए गये।

दहीत थारू अधिकांशतः कृषि और शिकार करके जीवनयापन करते हैं। थारूओं का वह समुदाय जो पशुपालन का जीवनयापन करता था दहीत थारू के नाम से उसकी पृथक पहचान की गयी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि न तो सभी थारू राजस्थान के मूल निवासी रहे हैं और न ही वे एक साथ किसी वर्ग विशेष से ही जुड़े हैं, जैसा कि थारूओं के नामकरण पर विचार करते समय हम देख चुके हैं।

तराई के उपत्यका क्षेत्र में बसने वाली समूची मद्यप जाति को ही थारू नाम दे दिया गया था। अतः गोचारण करने वाली थारू जाति दहीत नाम से सम्बोधित की जाने लगी। जैसे आज अहीर हिन्दू किन्तु घोसी (यह शब्द घोष से विकसित हुआ है) मुसलमान होते हैं। उसी प्रकार अहीर थारू दूध दही का काम करने के नाते दहीत कहलाये।

दहीतों की दो अन्य उपजातियां हैं- खतखेररी और गड़दग्गा। खतखेररी अपने पशुओं की पिछली दोनों रान पर गर्म लोहे से दो आड़ी लकीरें दाग देते हैं। जबकि गड़दग्गा पशुओं के पुट्ठे पर गोलाकृति दागकर अंकित करते हैं। दहीत थारू अपने घर की छाजन के ऊपर फूल का एक पक्षी-सा आकार बनाकर रखते हैं।

जोगी थारू अपने को निर्गुण योग (नाथ पन्थी) परम्परा से जोड़ती है जिसके प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ हैं। प्रमुख दन्त कथा इनका आविर्भाव किसी ऐसे साधु से मानती है जो किसी थारू अविवाहिता स्त्री को पत्नी रूप में स्वीकार करते थे। थारू जोगी उन कनफटे योगियों के प्रति उच्च सम्मान की भावना रखते हैं जिनके भव्य मन्दिर बलरामपुर तथा गोरखपुर में स्थित क्रमशः देवीपाटन तथा गोरखनाथ के प्रतीक उपासना के तीर्थ स्थान हैं। यहां दर्शनार्थ ये थारू वर्ष में एक बार अवश्य आते हैं।

थारुओं को आदिम जाति तो नहीं किन्तु जनजाति की श्रेणी में रखा गया है। इस वर्गीकरण का निर्धारण स्वयं ही थारू जाति के पिछड़ेपन की पुष्टि कर पिछड़ेपन पर मुहर लगा देता है। इनका पिछड़ापन उनके निम्न सामाजिक स्तर पर आधारित है। थारू समाज अपने जाति समाज के ही भीतर कूपमंडूकवत् सीमित रहने वाली जन भीरु जाति है। ये आत्महीनता की भावना से इतने ग्रस्त रहे हैं कि अब तक दूसरों से मिलने, बात करने में भी संकोच करते हैं। वेशभूषा में भी स्तरीय निम्नता मिलती है। विशेषकर पुरुषों के पहनावे में अन्तरवर्ती थारू अधिकांशतः वर्ष के आठ महीने कोपीन की तरह पहनी जाने वाली एक लंगोटी मात्र धारण कर रात दिन काम में जुटे रहते हैं। ये जाड़े के दिनों में सलूका बनियान या मिर्जयी पहनते हैं। विवाह आदि संस्कारों या मेले-ठेले में भी थारू पुरुष अर्द्धनग्न ही रहते हैं। स्त्रियां अवश्य फैशनपरस्त होती हैं। गाढ़े रंग का (अध्रान) नगाहं-लहंगा चटकीली बेलबूटेदार चोली जिसमें प्रायः विरोधी रंगों (लाल-काला-नीला-हरा) रंगों के वस्त्र लगे होते हैं, उसे धारण करती हैं।

स्त्रियों के भारी आभूषणों से थारू लोग गृहस्थी की कीमत आंकते हैं।

थारू हिन्दुओं की ही उपजाति है। अतः इनके संस्कार भी प्रायः इतर हिन्दू संस्कारों से मिलते जुलते हैं। इसके बावजूद अधिकांश संस्कारों के रूप इतने भिन्न बन चुके हैं कि उनकी विलक्षणता थारुओं को एक विशिष्ट जातीय स्वरूप प्रदान करती है। (इस पर स्वतन्त्र लेख अपेक्षित है।)

संस्कार भाषा को बल देते हैं। भाषा संस्कारों को अधिक व्यापक बनाने में मददगार होती है।

भाषा एक निरन्तर विकासशील प्रक्रिया है। इससे एक ही स्थान की बोली में विभिन्न कालावधि में पर्याप्त अन्तर आ जाता है।

भाषाओं के विकास का मूल आधार भाषा की यह निरन्तर परिवर्तनशीलता की प्रकृति ही है।

थारूई बोली के स्वरूप का अध्ययन करने के लिए हमने आवश्यक समझा कि हम इस बोली के प्रवाह को एक निश्चित अवधि और क्षेत्र की परिधि में सीमित करके ही इसकी प्रकृति का विश्लेषण करें। अन्यथा विभिन्न कालखंडों में प्रचलित इसके भाषागत स्वरूप की विशेषताओं को अभिव्यक्ति न कर सकेंगे।

थारूई बोली के अध्ययन के लिए 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' का अध्ययन अभीष्ट नहीं है क्योंकि थारूई बोली का कोई प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्राचीन संकलन उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन को अपनाया जा सके।

दरअस्ल थारूई बोली हिन्दी भाषा के अन्तर्गत समाविष्ट है। अवधी, भोजपुरी के समान इसका भी विकास प्राकृत भाषाओं से हुआ है।

थारूई बोली का विकास किस प्राकृत से हुआ इस पर अब तक विद्वानों द्वारा जो विचार व्यक्त किये गये, उनमें वैषम्य है। इसका कारण है थारूओं पर हिन्दी की इतर बोलियों का प्रभाव। परिणामतः कुछ विद्वान थारुई बोली को भोजपुरी की उपबोली मानते हैं तो अन्य विद्वानों ने इसे अवधी की उपबोली बताया है। हिन्दी की अवधी और भोजपुरी बोली के अतिरिक्त कुछ स्थानों की थारूई पर मगही बोली का प्रचुर प्रभाव है यह तो (भारतीय आर्य भाषा) हिन्दी उपबोलियों के प्रभाव की स्थिति हुई। हिन्दी के अतिरिक्त नेपाली भाषा का भी थारूई बोली पर खास प्रभाव पड़ा है। इसका मुख्य कारण यह है कि नेपाल में थारूओं की संख्या भारतीय थारूओं की अपेक्षा कहीं अधिक है।

बुक्सा थारूओं की बोली उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के थारूओं तथा नेपाल स्थित सप्तरी अंचल के थारूओं से भिन्न है। बुक्सा थारूओं की बोली पर कुमाऊंनी बोली का विशेष प्रभाव पड़ा है। थारूई बोली मिश्रित हिन्दी की एक मिश्रित बोली के रूप में व्यवहृत की जा रही है।

थारू की उपबोलियां विशेषतया 5 हैं। यह 5 उपवर्ग हैं, जिनका निर्धारण थारूई बोली के मिश्रण के अनुपात से रेखांकित किया जा सकता है।

1) नेपाल के राप्ती अंचल के थारूओं की नेपाली मिश्रित थारुई बोली।
2) कुमाऊं, नैनीताल के थारूओं की कुमाऊंनी मिश्रित थारूई बोली।
3) बलरामपुर, गोंडा, बहराइच, खीरी, सीतापुर के थारूओं की अवधी प्रभावित थारुई बोली।
4) बस्ती, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर, देवरिया के थारूओं की अवधी एवं भोजपुरी प्रभावित थारुई बोली।
5) बिहार के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के थारूओं की मैथिली तथा मगही प्रभावित थारूई बोली।

थारूई के उपर्युक्त पांच विभेद उपबोलियों के ही रूप में मान्य किये जा सकते हैं, बोली के रूप में नहीं क्योंकि इन पांचों उपबोलियों में कुछ ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो थारूई बोली की एक अलग स्थिति की पुष्टि करते हैं। (इन उपबोलियों के साम्य और वैषम्य पर विस्तार से विवेचन शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक में देखें।)

थारूई की अपनी विशिष्ट शब्दावली है। थारूओं के मुख्य पेशे और उद्यम से जुड़े अपने प्रचुर पारिभाषिक शब्द हैं। यह उनकी बोली और उसके साहित्य (गद्य, काव्य, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि) में आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। थारूई के अधिकांश शब्द संस्कृत और पालि के तद्भव रूप में विकसित हैं। अरबी-फारसी मूल के भी कुछ तद्भव शब्द प्रचलित हैं। अंग्रेजी शब्दों के तद्भव शब्दों का चलन बढ़ा है।

थारूई का अर्थ तात्त्विक स्वरूप हिन्दी, विशेषकर उसकी बोली अवधी का अनुसरण करता है। थारूई की भाषिक संरचना हिन्दी के अनुरूप है तथापि इसकी अपनी एक विशिष्ट समृद्ध शब्द सम्पदा है जो साहित्यिक हिन्दी अथवा उसकी किसी उपबोली में नहीं मिलती। थारूई के प्रचुर संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों की पृथकता थारूई की अलग पहचान बनाते हैं। थारूई के क्रियापदों की संरचना साहित्यिक हिन्दी अवधी, भोजपुरी आदि इतर बोलियों से मिला है। थारूई साहित्य अधिकांशतः अलिखित है। अप्रकाशित है किन्तु विपुल है जो जन समुदाय के बीच छीज रहा है। इसके संरक्षण की विशेष आवश्यकता है।

थारूई साहित्य में लम्बी तथा छोटी दोनों प्रकार की कहानियों (किस्सा या बतकही) की प्रमुखता है। नाटक, संस्मरण आदि का प्रचलन अब आरम्भ हुआ है। मुहावरों, पहेलियों (बुझौवल) का प्रचुर प्रचलन

है, कहावतों की संख्या कम है। पद्य साहित्य में प्रमुखता लोकगीतों की है जो संस्कारपरक, ऋतुपरक, श्रम परिहारपरक, धर्माख्यानपरक, आराधनापरक तथा मनोरंजनात्मक हैं। पर्याप्त बालगीत तथा शिशुगीत भी प्रचलित हैं। लोकगाथाओं में पवांरों तथा चरित गाथाओं का चलन है जिसकी संख्या 8-10 तक है।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात थारू जाति को जनजाति घोषित कर इसके सर्वांगीण विकास के कार्यक्रम चलाये गये हैं, जिनका प्रभाव थारूई जाति पर पड़ा है। इससे जागरूकता आयी है। शिक्षा का स्तर बढ़ा है किन्तु अब भी अल्प है। रहन-सहन नयी जीवनपद्धति के करीब आया है। इसके बावजूद, इस जनजाति पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। स्वयंसेवी संस्थाओं (NGO) की कार्यप्रणाली भी उसी तरह इस क्षेत्र में जारी है जिसके लिए ऐसे संगठन ख्याति प्राप्त हैं।

❐❐

सी-3/231 लोदी कॉलोनी
नई दिल्ली.-3 मो. 9873372181
Email- artistanupam@gmail.com